वर्ष 6 अंक 10 अक्टूबर 1984 एक रुपया

सीटू मजदूर

सी. आई. टी. यू. का मासिक मुखपत्र

सीटू जनरल काउंसिल जयपुर सितम्बर 28-30, 1984

अध्यक्षीय भाषण

बी. टी. रणदिवे.

साथियों,

मैं अपने उन साथियों की याद में श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं जो अब हमारे बीच नहीं हैं. इन साथियों ने मजदूरवर्ग की हितों की रक्षा करते हुए अपने प्राणों का बलिदान दिया; उनमें से कुछ गुंडा आक्रमण के शिकार हुए और अनेक को पुलिस गोलियों का शिकार बनना पड़ा. मैं त्रिपुरा के अपने उन साथियों की याद में भी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं जिन्हें कांग्रेस (आई) के गुंडों ने हत्या की.

हमारे संगठन की रक्षा तथा मजदूरवर्ग के अधिकारों की हिमायती करने वाले हमारे बहुत सारे साथियों को पुलिस अत्याचारों को झेलना पड़ा, जेल भी जाना पड़ा—हम उनके बहादुरी और साहस को श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं. हम उन दसियों हजार मजदूर, कर्मचारियों के प्रति सहानुभूति और एकजुटता का इजहार करते हैं जिन्हें तालाबंदी और छंटनी का शिकार बनाकर उनके परिवारवालों के साथ दुर्दशा और बर्बादी के कगार पर ढकेल दिया गया है. हमारे देश भर में, इससे पहले शायद ही कभी इतने बड़े पैमाने पर इतने सारे परिवारों को रास्ते पर ला खड़ा किया गया हो.

अमरीकी युद्धोन्मादना

साथियों, कानपुर सम्मेलन के बाद से इस पन्द्रह महीनों के दरमियान राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में तेजी से बदलाव देखने को मिला है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है. अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति आज एक खतरनाक विस्फोटक स्थिति में है. जंगखोर अमरीकी साम्राज्यवादियों ने, सोवियत संघ के खिलाफ योरोप में सैकड़ों क्रूइस मिसाइलें तैनात की है. उसके नाटो सहयोगियों ने भी, अपने देश के जनमत की उपेक्षा करते हुए इस आत्मघाती खेल में सहयोग दे रही है. जबर्दस्त शांति प्रदर्शनों एवं अन्य व्यापक कार्रवाइयों के जरिए इन देशों के लाखों करोड़ों लोग, योरोप में तैनात किए गए मिसाइलों की वापसी के मांग पर शसक्त आवाज उठा रहे हैं. खुद अमरीका में शांतिप्रिय शक्तियां रीगन की युद्धनीतियों की भर्त्सना कर रहे हैं और अगले राष्ट्रपति चुनाव में विश्वशांति का सवाल एक महत्वपूर्ण मसला बन गया है. विश्व को नाभिकीय विनाश की वीभिषिका से बचाने के लिए सोवियत संघ तथा समाजवादी देशों ने कई ठोस प्रस्ताव पेश किए हैं साथ साथ सोवियत संघ ने अमरीकी साम्राज्यवादियों को यह भी चेतावनी दी है कि अगर किसी ने उसपर आक्रमण करने की हिम्मत की तो जबावी कर्रवाई के लिए वह पूरी तरह तैयार है. जबकि दुनिया के लोग एवं मजदूरवर्ग सोवियत संघ के इन शांति प्रयासों की सराहना करते हैं हमारे देश के तथा विदेशों में कुछ लोग—साम्राज्यवादी शक्तियों की नाभिकीय युद्ध तथा दुनिया पर हावी होने की साजिशों एवं समाजवादी देशों के शांति प्रचेष्टाओं के बीच कोई अंतर न समझने की मूर्खता दिखाते हुए—दो महान् शक्तियों वाले प्रचार चला रहे हैं. और इस तरह साम्राज्यवाद को महान् तथा समाजवाद को बदनाम कर रहे हैं. अंतरिक्ष को नाभिकीय अस्त्र-रहित क्षेत्र बनाए रखने की सोवियत संघ की प्रस्तावों को ठुकराकर अमरीकी साम्राज्यवादियों ने एकबार फिर युद्ध की अपनी मुहिम को ही उभारा है.

रीगन की युद्धोन्मादी भावनाओं से लोग एकबार फिर वाकिफ हुए जब उसने मजाक मजाक में सोवियत संघ को अवैध घोषित करते हुए उसपर बमबारी का आदेश दिया और प्रचार माध्यम से इसका प्रचार भी किया गया. सोवियत संघ के खिलाफ नाभिकीय युद्ध के प्रचार का यह घटियापन रीगन की वहशियाना मुहिम की ओर ही इशारा करता है.

भारत के मजदूरवर्ग तथा ट्रेड यूनियन आंदोलन को चाहिए

कि इन खतरनाक परिस्थितियों में, युद्ध के खिलाफ अपने संघर्ष को और तत्परता से आगे बढ़ाए, तथा नाभिकीय हमले की इस अमरीकी साम्राज्यवादी खेल को, समाजवाद को ध्वंस करने की तथा दुनिया पर हावी होने की इस खेल को, बेनकाब करते हुए लोगों को लामबंद करें.

विश्व शांति की रक्षा के लिए तथा युद्ध के खिलाफ 1 सितम्बर को शांति दिवस मनाने का अंतर्राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन के आह्वान को शानदार रूप से सफल बनाना सभी सीटू यूनियनों की अहम जिम्मेदारी है.

ब्रिटेन के कोयला मजदूरों को बधाई

साथियों, हमें ब्रिटेन के उन हजारों कोयला मजदूरों का गर्मजोशी से अभिनन्दन करना चाहिए जो बेरोजगारी तथा खदानों को बन्द किए जाने के खिलाफ बहादुराना संघर्ष चला रहे हैं. हमारी सरकार की ही तरह, उस देश की सरकार ने ने भी इस शानदार हड़ताल को कुचलने की दमतोड़ कोशिशें की जिसे नाकामयाब करते हुए ब्रिटेन के कोयला मजदूर कई महीनों से अपने संघर्ष को सफलता से आगे बढ़ाते आ रहे हैं. हम उनके इस बहादुराना संघर्ष की सफलता की कामना करते हैं. हम, थैचर सरकार की मजदूर-विरोधी नीतियां तथा मजदूरों पर जारी दमन की तीव्र भर्त्सना करते हैं और हमें विश्वास है कि ब्रिटेन के ट्रेड यूनियन संगठनों एवं तमाम मजदूर-वर्ग, कोयला मजदूरों के इस संघर्ष में उनके साथ खड़े होंगे और उन्हें जीत हासिल करने में मदद देंगे.

चौतरफा संकट में, भारत

साथियों, हमारे देश की स्वतन्त्रता तथा हमारे पड़ोसी देशों की स्वतन्त्रता का सम्मान करनेवालों के लिए इस उप-महादेश की वर्तमान परिस्थिति से चिंतित होना लाजिमी हैं. इन सभी देशों में साम्राज्यवादियों ने, जनवादी ताकतों की प्रगति में बाधा डालने के प्रयास में लोगों में फूट डालने की कोशिश की तथा प्रतिक्रियाशील अधिनायकवादी ताकतों की मदद की. सभी देशों में ये प्रतिक्रियाशील ताकतों के जरिए, राष्ट्रीयता का हौवा को उकसावा देकर पड़ोसी देशों के बीच टकराव पैदा कर देती है. भारत के संदर्भ में उनकी यह चाल है कि चारों ओर से प्रतिक्रियावादी तथा भारत के प्रति द्वेष-भाव रखनेवाले सरकारों से घेर लिया जाय जिससे कि भारत को अपने नीतियों में बदलाव लाने में मजबूर किया जा सके तथा लोगों के बढ़ते जनवादी आकांक्षायों को कुचला जा सके. इसलिए ये पाकिस्तान के फौजी शासक को अपने देश के जन-आन्दोलन को कुचलने तथा भारत के खिलाफ इस्तेमाल किए जाने के लिए भारी मात्रा में हथियारों से लैस कर रहे हैं. एफ-16, हारपुन मिसाइलें तथा दूसरे हथियार खरीदने के लिए पाकिस्तान को काफी आर्थिक सहायता देना हमारे इन दोनों देशों के बीच टकराव बनाए रखने के लिए खर्च किए जा रहे हैं. अगर इस देश का मजदूर-वर्ग इन साम्राज्यसाजिशों को समझने में तथा कारगररूप से इसका मुकाबला करने से चूकते हैं तो इससे बड़ा आत्मघाती कदम हो नहीं सकता. इन्हीं दरिन्दों ने भारत और बंगलादेश के बीच भी तनाव पैदा करने में कामयाब हो गए. और अब, यह साम्राज्यवादी शक्तियां श्रीलंका के प्रतिक्रियाशील जयवर्द्धने सरकार को अपने चंगुल में फंसाकर इन दोनों देशों के लोगों के बीच दुश्मनी पैदा करने के खेल में लगे हुए हैं.

श्रीलंका की घटनाएं

सीटू तथा उसकी संगठनों ने श्रीलंका में तमिल अल्पसंख्यकों पर चलाए गए बर्बर दमन और अत्याचारों पर अपना गम्भीर रोष तथा विरोध प्रकट किया है तथा तमिलों द्वारा उसके खिलाफ चलाये गए संघर्ष की सराहना की है. इज्राइली तथा ब्रिटिश भाड़े के टट्टुओं द्वारा जेल के अन्दर पड़े निरस्त्र लोगों की हत्या जैसी कायरतापूर्ण कार्रवाई आदि सिर्फ तमिलों के लिए ही नहीं बल्कि तमाम श्रीलंकावासियों के लिए एक भयानक खतरा है. इन स्वार्थी सशस्त्र साम्राज्यवादियों को अगर एक बार देश में घुसने का मौका दिया गया तो उन्हें बाहर निकालना मुश्किल है. पर जयवर्द्धने इस खतरनाक राह पर ही चलने का निश्चय किया है क्योंकि उन्हें स्वस्थ्य जनवाद पर विश्वास रखने वाले श्रीलंकावासियों पर भरोसा नहीं. हमें विश्वास करने की काफी वजह है कि त्रिकोमाली अमरीकी नियन्त्रण में है तथा कई और महत्वपूर्ण स्थानों को भी उसीकी नियन्त्रण में सौंप दी जायगी. अपने ही देश के अल्पसंख्यक समुदाय के खिलाफ लड़ने के लिए साम्राज्यवादियों पर निर्भर करने का यही अनिवार्य नतीजा है.

साथियो, ऐसा लगता है कि या तो श्रीलंका में सेना तथा पुलिस किसी के नियन्त्रण में नहीं है या फिर उन्हें किसी की भी हत्या करने की छूट दी गई होगी अन्यथा जाफना के एक शहर को नौसेना द्वारा मिट्टी में मिला दिये जाने या सेना द्वारा मन्नर को ध्वस्त किए जाने की कोई व्याख्या देना मुश्किल है. श्रीलंका सेनाओं की बर्बर अत्याचार यह दिखाता है कि एक सभ्य सरकार की तमाम वसूलों को ताक पर रखकर जयवर्द्धने सरकार किस हद तक नीचे उतर सकती है. दरअसल, श्रीलंका के तमिल अल्पसंख्यकों को फौजी शासन से भी बदतर परिस्थिति का मुकाबला करना पड़ रहा है.

साथियों, इन कठिन परिस्थितिओं में जनता को एकबद्ध करने, अल्प संख्यकों के प्रति न्याय के लिए तथा सम्राज्यवादी हस्तक्षेप के खिलाफ, श्रीलंका की कम्युनिस्ट पार्टी तथा वाम पार्टियों की भूमिका की हमें प्रशंसा करनी चाहिए.

श्रीलंका के सत्ताधारी पार्टी के राजनीतिज्ञों द्वारा बकसावेपूर्ण बयान जारी किए जा रहे हैं ताकि दोनों देशों के जनता के बीच तनाव बनी रहे. और अमरीकी साम्राज्यवादियों के लिए, जिन्हें जयवर्द्धने ने मदद के लिए बुलाया है, यह स्थिति मददगार साबित हो रही है जिसके जरिए ये भारत को चारों तरफ से घेरने में सफल हो रहे हैं.

श्रीलंका में तामिलों पर हो रहे अत्याचार के कारण तामिलनाडु में उत्पन्न नाजुक स्थिति को जिस साहस पूर्ण और सही तरीकों से सम्भाला गया है उसके लिए हमें सीटू राज्य कमेटी तथा हमारे यूनियनों को गर्मजोशी से बाधाई देना चाहिए। जनता के इस रोष का फायदा उठाकर, कुछ अदुरदर्शी राजनीतिज्ञों तथा पार्टियों ने राष्ट्रीयता के भावनाओं को उछालकर स्थिति को बराबर के लिए तनावपूर्ण बनाए रखने को सोचा था—इससे साम्राज्यवादी साजिशों को ही मदद मिलती.

श्रीलंका में तमिल समस्या को एकमात्र अंतर्राष्ट्रीय मजदूरवर्ग की राय के दवाव से तथा श्रीलंका के तमिलों व अन्य समुदाय के जनवादी शक्तियों की एकता के बल पर ही सुलझाया जा सकता है. हमारे यूनियनों को इस जटिल समस्या को समझना होगा तथा तामिलों को निरंतर समर्थन देते हुए अंतर्राष्ट्रीय मजदूर बर्ग को जागरूक करना होगा ताकि इनके प्रति न्याय हो सके.

राष्ट्रीय स्थिति—कपड़ा उद्योग में संकट

साथियों, देश की वर्त्तमान राजनीतिक स्थिति पर चर्चा करने से पहले मैं ट्रेड यूनियन आंदोलन द्वारा सामना किये जा रहे एक जरूरी सवाल पर चर्चा करना चाहूंगा. मैं सूती कपड़ा उद्योग की संकट का जिक्र कर रहा हूं जहां दसियों हजार मजदूर दुर्दशा और बर्बादी के कगार पर ढकेल दिये गये हैं.

साथियों, हमारे सूती कपड़ा उद्योग पिछले पचास सालों के सबसे भयानक स्थिति से गुजर रही है जिसमें सैकड़ों मिलें बीमार है, कुछ बंद पड़ी है और कुछ तालाबंदी के शिकार है और इस तरह हजारों मजदूर बेरोजगार बना दिये गये हैं. जब आधा से ज्यदा देशवासी करीब करीब आधे नंगे हैं तब कपड़ा उद्योग में संकट सचमुच एक आश्चर्यजनक बात है. पर पूंजीवादी व्यवस्था इसी तरह चलती है, बल्कि देश की मिश्र अर्थनीति—पूंजीवाद में विश्वास रखनेवाले भारत सरकार—इसी तरह काम करती है. इस संकट से न केवल मिल मजदूर ही प्रभावित है बल्कि इस उद्योग से सम्बन्धित लाखों अन्य लोग भी प्रभावित है. इस संगठित उद्योग में, पावरलूम तथा हथकरघा मजदूर सहित, करीब 80 लाख मजदूर नियुक्त हैं. और इससे सम्बद्ध व्यवसाय और सहायक उद्योगों से करीब इतने ही लोग सम्बन्धित है. अब, इस संकट का शिकार बनाकर इस देश की जनता के एक व्यापक हिस्से को रास्ते पर लाकर खड़ा कर दिया गया है. यह संकट वर्षों से पनप रही थी और इसके लिए सरकार की आर्थिक नीतियां ही जिम्मेदार है. कपड़ा जैसे मूल आवश्यकता की वस्तु को भी अगर मुद्रास्फीति के प्रभाव से हम बचा नहीं पाते तथा आम जनता की खपत के लिए कीमतों को योजनाबद्ध रूप से कम नहीं रख पाते तो इस संकट से बचना मुमकिन नहीं है.

1979 से कपड़ों की प्रति व्यक्ति खपत में लगातार गिरावट आती रही है. 1979 में यह 13.65 मीटर थी जो 1971 में 12.08 मीटर हो गई और वर्त्तमान में वार्षिक खपत लगभग 10.5 मीटर पर आ रूकी है. लोगों के इस्तेमाल के लिए उपलब्ध कपड़े की मात्रा में भी पिछले कईभी सालों से गिरावट आती गई. 1962 में, जब उपलब्ध मात्रा 15.2 मीटर थी तबसे गिरावट आते आते 10 मीटर पर आ ठहरी है और इसके बावजूद भी स्थिति संकटपूर्ण है इससे साफ जाहिर है कि हर कांग्रेस योजनाओं के साथ साथ कपड़े की जरूरत को मिटाने में लोग असमर्थ होते गये जिसके कारण अपने जरूरत को कम करने में मजबूर हुए. और कांग्रेस (आई) सरकार यह दावा करती है कि छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान लाखों लोगों को गरीबी सीमारेखा से ऊपर लाने में सफल हुई है.

कपड़े की उपलब्धता में लगातार गिरावट के बावजूद उसकी खपत में कमी आने की मूल कारण इसकी कीमतें हैं साथ साथ केन्द्र सरकार की घाटे की वित्त व्यवस्था से उत्पन्न मद्रास्फीति भी है. यह बात, सरकार की एक समिति—वाणिज्य मंत्रालय के टेक्सटाइल समिति ने भी स्वीकार की है. इसके अनुसार, 1978 में जब सूती कपड़े का औसत मूल्य 5.95 रु. था तो व्यक्ति प्रति खपत 11.60 मीटर थी जबकि 1981 में औसत मूल्य बढ़कर 8 22 रु. होने के साथ साथ खपत 9.40 मीटर तक गिर गई.

1977-78 में, संसद की मूल्यांकण समिति ने, सरकार की गलत टेक्सटाइल नीति तथा कपड़े की खपत में गिरावट आने के बारे में निम्नलिखित विचार पेश किए.

"समिति, यह नोट करते हुए हैरान है कि आजादी के तीस साल बाद तथा चार पंच-बर्षीय योजनाओं के पूरे होने के बावजूद, सरकार अबतक, कपड़ा जैसी मूल आवश्यकता के संदर्भ में एक ठोस राष्ट्रीय नीति नहीं बना पाई है. समिति इस बात को फिर बता देना चाहती है कि कपड़ा उद्योग के लिए बनाई गई कार्यदल ने 1978-79 तक देश में 17.67 मीटर प्रति व्यक्ति कपड़े की खपत के बारे में परिकल्पना तैयार किया

था. इसके विपरीत प्रति व्यक्ति खपत 1973 के 14.49 मीटर से घट कर 1974 में 13.62 तथा 1975 में 13.81 मीटर हो गई. यह गिरावट खासकर ग्रामीण क्षेत्र में और मुख्यत: निम्न आयवाले लोगों में पाया गया."

लोगों की क्रयशक्ति, खासकर किसानों तथा खेत मजदूरों की, इतनी ज्यादा कम हो गयी है कि, वर्तमान उत्पादन जोकि उत्पादन क्षमता का आधा है, उसका भी खपत नहीं कर पा रहे हैं. अनुमान है कि सरकारी, गैर-सरकारी क्षेत्र मिलाकर कपड़े की वार्षिक उत्पादन क्षमता 220,000 लाख मीटर है जबकि 1983-84 में सबसे ज्यादा 115,000 लाख मीटर ही उत्पादन किया जा सका और यह भी हमारे देश की खपत के लिए ज्यादा साबित हुआ क्योंकि इसमें से 10000 12000 लाख मीटर निर्यात किया गया. निर्यात के लिए पश्चिमी देशों पर निर्भरशील होने के कारण भी कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि योरोप तथा अमरीका, अपने साम्राज्यवादी आकांक्षाओं तथा भारत-विरोधी नीतियों के कारण हमारे देश से आयात लगातार घटाती चली जा रही है. 1976-77 में भारत द्वारा योरोप में की गई निर्यात 13680 लाख रु. थी जो 1982-83 में घटकर 7260 लाख रु. हो गया. इसी तरह अमरीका में 1976-77 में 4060 लाख रु. मूल्य का निर्यात, घटकर 1982-83 में 1140 लाख रु. हो गया. भारत द्वारा योरोप, अमरीका, अफ्रीका में निर्यात का कुल मूल्य 26220 लाख रु. से घटकर 1982-83 में 13450 लाख रु. हो गया यानि आधा हो गया.

पूंजीवादी संकट, भारत-विरोधी दृष्टिकोण आदि निर्यात में गिरावट के कारणों में से है और यह स्थिति और भी गम्भीर हो जाता अगर सोवियत संघ हमारी मदद में नहीं आती. सोवियत संघ में भारत का निर्यात, जिसका कुल मूल्य 1976-77 में 3830 लाख रु. था, 1982-83 में बढ़कर 17790 लाख रु. हो गया जिसके कारण पश्चिमी देशों में निर्यात में कमी को पूरा किया जा सका. इस तरह हम देखते हैं कि भारत की कुल निर्यात मूल्य 1976-77 में 30050 लाख रु. से बढ़कर 1982-83 में 31240 लाख रु. हो गया है. संकट से मुक्त समाजवादी अर्थनीति ही हमारे काम आया और इसी के कारण 1982-83 में निर्यात में भी बृद्धि सम्भव हो सका.

साथ ही साथ, हम यह भी देखते हैं कि मिल मालिकान के कुप्रबंध तथा बेतहाशा मुनाफा लूटने की प्रवृत्ति भी इस उद्योग को दुर्दशाग्रस्त करने के लिए काफी हद तक जिम्मेदार हैं.

कुछ केन्द्रों में स्थिति उतना खराब नहीं है जितना कि मिल मालिकान बताने की कोशिश करते हैं. पावरलूमों की संख्या, जो 1951 में 23,000 से बढ़कर 6,00,000 हो गई है, में तेजी से बृद्धि, मिल सेठों द्वारा दिए गए संरक्षण और मदद की ओर ही इशारा करता है. यह हमें मालूम है कि बहुत सारे मिलों में बुनाई विभाग को बन्द कर दिया जाता है तथा उत्पादन शुल्क से बचने और मुनाफा लूटने की लालच में धागों को पावरलूमों को दिया जाता है. वर्तमान संकटपूर्ण स्थिति का एक मुख्य कारण यह है कि कम कीमत पर कपड़े उपलब्ध कराने की देशी बाजार की माग को नजरअन्दाज करना क्योंकि यह मालिकों के द्रुत मुनाफा लूटने के प्रयासों में बाधा पहुंचाती. मालिकान, विदेशी बाजार के लिए या फिर कीमती कपड़ों की मांगों की ही पूर्ती करना चाहती है. उद्योग को बचाने के लिए, जनता के व्यापक हिस्से, जो ज्यादातर गरीब हैं, की मांगों की पूर्ती लाजिमी है और इसके लिए मालिकों को मजबूर करना पड़ेगा ताकि मिलबन्दी, तालाबन्दी या ले-ऑफ रोका जा सके.

एक मांग जो निरंतर मालिकान तथा सरकार द्वारा उठाई जाती है वह है नवीकरण की मांग. सबसे पहले गौर करने की बात यह है कि नवीकरण से उत्पादन में काफी बृद्धि होगी —उसे कौन खरीदेगा? क्या कपड़ों की कीमतें कम की जायगी?

'कामर्स' में छपी एक लेख से मैं उद्धृत करना चाहूंगा. इसमें कहा गया—"मिलों में सस्ते दरों में किस तरह कपड़े बनाये जायेंगे जब उत्पादन खर्चों में तेज रफ्तार से बृद्धि होती जा रही है ? क्या व्यापक आधुनिकीकरण इस समस्या का समाधान है ?"

"इस उद्योग के लिए ऐसी उम्मीद करना गलत होगा क्योंकि इस तरह के तकनीकी विकास और आधुनिकीकरण के खर्चे तभी वापस आ सकती है जब इससे कीमती कपड़े तैयार हों पर इनके खरीददारों की संख्या निहायत ही कम है. इसलिए यह बहस, की आधुनिकीकरण से कपड़ों की कीमतें घटेंगी न केवल गलत है बल्कि विभिन्न अनुसंधान और अध्ययन का एक ही निष्कर्ष है—आधुनिकीकरण से पूरे औद्योगिक स्तर पर कोई फेरबदल नहीं हो सकेगा. मिसाल के तौर पर कम मजदूरों से ज्यादा उत्पादनक्षमता पर आधारित विभिन्न उच्च तकनीकी मशीनों के तकनीकी आर्थिक कार्यक्षमता के विश्लेषण यह दिखाता है कि भारतीय परिस्थिति में जबतक कपड़े की कीमत 12 रु. प्रति मीटर नहीं होती तबतक आर्थिकरूप से यह फायदेमन्द नहीं हो सकता. दूसरी बात यह है कि आधुनिकीकरण से बेरोजगारी बढ़ेगी और अगर रोजगार देने वाली देश की इस सबसे बड़ी उत्पादन-क्षेत्र में मजदूरों को बेरोजगार बना दिया गया तो इसका असर उपभोक्ता बाजार पर और भी बुरा होगा. इसका मतलब यह होगा कि उद्योग अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारेगी."

मुनाफा लूटने के लालच में, देशी बाजार की उपेक्षा एवं विदेशी बाजार के साथ इस उद्योग को जोड़ने की साजिश में ही आधुनिकीकरण का हौवा खड़ा किया जा रहा है और इस सौदेबाजी में हमारे हजारों मजदूरों को वे बेरोजगार बनाना चाहते हैं.

उसी लेख में सरकार की संचालन अकुशलता की तीखी आलोचना की गई है. "दुर्दशाग्रस्त अनुरक्षण इस स्थिति का एक मुख्य कारण है. असल उत्पादन और उत्पादनशीलता में एक बहुत बड़ी दरार है. आंकड़े बताते हैं कि मिलों में उत्पादकता औसत 30 फीसद तक बढ़ाई जा सकती है."

अकुशल प्रबन्धन की समस्या से निपटने तथा उद्योगों को लोगों की जरूरतों के आधार पर पुनर्विन्यास करने के बजाय सरकार एवं मालिकान, दोनों की ही चिंता, उद्योग को स्वस्थ्य बनाए रखने से ज्यादा, निर्यात पर है. अगर उद्योग इस विशाल देशी बाजार पर पनप नहीं सकती तो यह सरकार तथा मालिकान की नीतियों का दिवालियापन को ही दिखाता है. इसके अलावा, प्रबंधन नावाजिब श्रम नीतियां अपनाते है, युवा मजदूरों को कई सालों तक अस्थाई रूपी कामों पर रखकर उन्हें डी.ए. तथा बोनस से बंचित किया जाता है और कभी-कभी तो कानूनी प्रावधानों से बचने के लिए ऐसे कामों को ठेकेदारों को दे देते हैं. इससे मजदूरों का शोषण और तीव्र होता है, साथ साथ इससे लोगों की जरूरतें भी पूरी नहीं होती.

कांग्रेस योजनाओं की हर कामयाबी गरीबों को और गरीब बनाती रही है साथ ही साथ मालिकान और प्रबन्धन के स्वार्थी दृष्टिकोण के कारण आज कपड़ा उद्योग सबसे गम्भीर संकट से गुजर रही है. इस देश में आधुनिक किस्म के कपड़े तैयार किए जाने के समय से शुरू हुए यह संकट 1930 की संकट से कहीं ज्यादा गहरा और व्यापक है.

1983 में सूती कपड़ा मिलों की संख्या 805 थी जिसमें सौ से भी अधिक मिलें बीमार होने के कारण सरकार द्वारा अधिग्रहण किया गया. 1971 में सिर्फ 8 मिलें अधिग्रहण किये गये, 1972 में यह संख्या अचानक बढ़कर 65 हो गई. पर सरकार ने रूग्णता के मूल करणों को हटाने का कोई प्रयास नहीं की. सरकार द्वारा 103 मिलों का अधिग्रहण ही कहानी का अन्त नहीं है और भी मिलें लगातार बन्द होती जा रही है. बम्बई में पिछले हड़ताल के बाद 50 हजार मजदूर बेरोजगार हो गए हैं. तमिलनाडु, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, प. बंगाल तथा अन्य कई राज्यों में भी मिलबन्दी व तालबन्दियां जारी हैं. गुजरात में 24 तथा तमिलनाडु में 14 मिलें बन्द पड़ी हैं. कुल 58 कपड़ा मिलें बन्द कर दी गई हैं जिससे 73,000 मजदूर प्रभावित हैं. और इसके साथ बम्बई के बेरोजगार मजदूरों को जोड़ने से कुल 1,25,000 मजदूर आज बेरोजगार बना दिए गए. संकट की गहराई और व्यापकता इतना विशाल है और सरकार चुप बैठी है. कम से कम कुछ राज्यों में कानूनी तौर पर भी सरकार इस मनमानी तालाबन्दी तथा मिलबन्दियों पर रोक लगा सकती थी. कुछ कानूनी प्रावधान जो उपलब्ध है उसे भी कुछ क्षेत्र में अदालतों ने रद्द करार देकर मालिकों की ही मदद की. पिछले जुलाई में संसद ने औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम पारित किया है जिसमें मिलबन्दी, ले-ऑफ या छंटनी के लिए सरकार से अनुमति लिए जाने की बात को बाध्यतामूलक बनाया गया. पहले से बन्द पड़े 58 मिलों के क्षेत्र में इसका क्या असर होगा ? यह तो लोगों को धोखा देने का एक तरीका है—पहले पूंजीवादी हमले को अपना लक्ष्य हासिल करने दिया जाता है और फिर यह तरीका अपनाया जाता है जिसपर भविष्य में भी कोई कार्रवाई नहीं की जाती.

अधिग्रहित मिलों को चलाने के मामले में सरकार खुद भी असफल रही है. कुप्रबंध, भ्रष्टाचार तथा सामाजिक चेतना की कमी—एक ही तरह की बीमारी से यह भी ग्रस्त हैं. एन टी सी प्रबन्धन भी मिलों को चलाने के लिए, समानता के आधार पर मजदूरों की भागीदारी को मानने से इंकार करती है. यह इसलिए किया जाता है क्योंकि इससे व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफास हो जायगा.

वर्षों की विकेन्द्रीत उत्पादन से, खासकर पावरलूम के मामले में, काफी प्रगति हुई है. कुल विकेन्द्रित उत्पादन अभी कपड़ा मिलों के उत्पादन से ज्यादा है. मालिकों का कहना है कि पावरलूम उत्पादन, मिल उत्पादन के साथ इसलिए मुकाबला कर पाती है क्योंकि इसे उत्पादन या अन्य शुल्क नहीं देना पड़ता है. पर मिलों में उत्पादन खर्च तो बहुत कम बैठता है तो फिर ऐसा क्यों हो रहा है कि एक आगे बढ़ रही है और दूसरा पिछड़ रहा है ?

यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अगर यह उद्योग, लोगों की जरूरतों तथा कम कीमतों पर कपड़े उपलब्ध कराने की उनकी मांगों से सहीरूप से जुड़ा हुआ हो तो मजदूर, जनता या उद्योग को कोई परेशानी नहीं रहेगी. यह साफ है कि सूती कपड़ा उद्योग को पूंजीपतियों के हाथों में रहने नहीं दिया जा सकता है. यह इसे बर्बाद कर रहे है और अपने स्वार्थ के लिए बर्बाद करते रहेंगे. बम्बई के कुछ मिल मालिक अपने मिलों और संलग्न जमीनों को बेचकर भारी मुनाफा कमाने की साजिश कर रहे हैं. हजारों मजदूरों के जीवन से खिलवाड़ कर यह मालिकान करोड़ों की जायदाद इकट्ठा करना चाहते हैं.

कपड़ा उद्योग का राष्ट्रीयकरण की मांग करो

कपड़ा उद्योग का राष्ट्रीयकरण ही एक मात्र समाधान है. इस उद्योग में संकट, मालिकों के दिवालियापन तथा समाज-

विरोधी चरित्र को ही दिखाता है. प्रबंधन का बागडोर अगर अधिकारीतंत्र के हाथों छोड़ दिया जाय तो राष्ट्रीयकरण से भी कोई फायदा नहीं, क्योंकि भ्रष्टचार की गहराई के अलावा, इनके और इजारेदारों के बीच कोई ज्यादा फर्क नहीं. एन टी सी का मिशाल हमारे सामने है.

इसलिए, राष्ट्रीयकरण के साथ-साथ उद्योगों में तथा संस्थानों के प्रबंधन में समानता के आधार पर मजदूरों की भागीदारी जरूरी है. इसके बिना, मुनाफाखोरी दृष्टिकोण या पूंजीपतियों के समाज विरोधी भूमिका में, बदलाव लाना नामुमकिन है. इसलिए, सीटू की यह मांग होना चाहिए कि कपड़ा उद्योग का अविलंब राष्ट्रीयकरण हों तथा बंद मिलों को खोली जाय.

सरकार इस राष्ट्रीयकरण के खिलाफ है. इसलिए कुछ वित्तीय सहायता, कर्ज आदि देकर तथा आधुनिकीकरण के प्रस्ताव लाकर मदद करने की कोशिश कर रही है—इससे मूल समस्या का समाधान नही हो सकता.

यह जरूरी है कि सूती वस्त्र के मामले में शुल्कों में भारी छूट दी जाय. लोगों को विवस्त्र कर लाखों की मुनाफा लूटने की इजाजत सरकार को नहीं दी जा सकती. कपड़ों की कीमतें घटाकर जनता को यह राहत दिया जाना चाहिए. 1982-83 में सूती कपड़े पर 124 करोड़ रु. की उत्पादन शुल्क लगाई गई तथा सूत पर 96 करोड़ रु. की और कपड़ों पर कुल 700 करोड़ रु. की. जीवन यापन के इस न्यूनतम जरूरत की चीज पर इतना भारी शुल्क थोपने की सरकार का कोई हक नहीं कीमतों में भारी कटौती तथा इन करों के बोझ को हटा लेने से जनता को बहुत राहत मिलेगी.

इस संकट के कारण कपड़ा उद्योग के मजदूरों को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा. उनके हितों की रक्षा करना ही संगठनों का अहम जिम्मेदारी है. हमें यह मांग करना होगा कि तालाबंदियों व मिलबंदियों को गैरकानूनी घोषित की जाय तथा बंद मिलों को फिर से खोली जाय.

ट्रेड यूनियन एकता को आगे बढ़ाओ

साथियों, हमें ट्रेडयूनियन एकता के सवाल पर, हमारे उपलब्धियों पर, संतोष करने की कोई बात नहीं. यद्यपि इस दिशा में हमारे कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं, पर अबतक हमने जो हासिल किया है वह इस परिस्थिति की तुलना में निहायत ही कम है. तालाबंदी क्लोजर व छंटनी रूपी हमले इतना व्यापक होता जा रहा है कि ट्रेड यूनियन आंदोलन यह नहीं दावा कर सकती है कि इसके खिलाफ निरंतर संघर्ष करने में वह कामयाब रही, इसकी तीव्रता तक कम करने में वह असफल रहे. देश का सबसे बड़ा उद्योग, कपड़ा उद्योग, ही हमारे ट्रेड यूनियन एकता की कमजोरी का जलता मिशाल है. इसका फायदा उठाकर सरकार तथा मालिकान उत्पादकता के साथ वेतन को जोड़कर समझौते करने में मजबूर कर रहे हैं. हाल के महीनों में इसके अलावा, ट्रेड यूनियन आजादी पर भी हमले बढ़ रहें हैं. हड़ताल पर जाने से वेतनों में मनमानी कटौती की जा रही है. कोल अथरिटि आफ इंडिया ने ब्रिटिश राज द्वारा पारित कानून के तहत एक दिन की हड़ताल के लिए हजारों कोयला मजदूरों के आठ दिनों के वेतन में कटौती की है. आजादी के पहले बनी यह कानून, जिस समय भारत के लोगों के कोई मौलिक अधिकार नहीं थे, के तहत की गई इस कार्रवाई के खिलाफ पटना उच्च न्यायालय का स्थगन आदेश को भी पहले तो न मानने की सोची गई, पर बाद में उनका विचार बदला. पर सरकार इस कानून को व्यापक रूप से इस्तेमाल करने की प्रचेष्टा में थी. कई राज्यों में इसे इस्तेमाल भी किये जा रहे हैं.

भारत सरकार ने एसमा के बल पर कोयला क्षेत्र में हड़ताल पर प्रतिबंध लगा दिये है. कुछ अन्य उद्योगों में भी एसमा के जरिए हड़ताल के अधिकार को खत्म कर दिया जा रहा है और इस कार्रवाई में उत्तर प्रदेश सरकार सबसे आगे है.

यह हमले और भी तेज होंगे. इसलिए अपने हितों के लिए तथा ट्रेड यूनियन आंदोलन की आजादी के लिए यह जरूरी है कि ट्रेड यूनियन एकता के लिए पहल कदमी दिखाएं ताकि और बड़े संख्या में यूनियनों को, केन्द्रीय संगठनों को तथा तमाम मजदूर वर्ग को एकबद्ध किया जा सके.

सातवीं योजना

साथियों, अब हम सातवीं योजना का उद्देश्यपत्र दस्तावेजों के बारे में बतायेंगे. यह लोगों के सामने अगले पांच सालों में देश की अर्थनीति एवं योजना के सम्बन्ध में इंदिरा सरकार की कार्यक्रमों का दस्तावेज है. आधुनिक उद्योग में रोजगार के अवसर, कृषि तथा कृषकों के बारे में सरकार की रणनीति तथा मजदूरों के लिए शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आवास व्यवस्था आदि कार्यक्रम तय करती है.

गहराते आर्थिक संकट के मौजूदा दौर में जब बेरोजगारी, छंटनी, मिलबंदी तथा छोटे-छोटे इकाइयों की बर्बादी व्यापक रूप से बढ़ रही है उस पृष्ठभूमि में पेश की गई यह दस्तावेज, मजदूर वर्ग और भारत की जनता को महंगाई, बेरोजगारी, झुग्गी-झोपड़ी में जिन्दगी गुजारने तथा पसीने की कमाई से कोई राहत नहीं देती. वही पुराने वादे दोहराये जाते हैं. और पुराने तौर तरीके अपनाए जाते हैं जो हर योजना के साथ-

साथ लोगों को और भी गहरी बर्बादी और दरिद्रता की ओर ढकेलती जा रही है.

जहां तक इस योजना के कुल लागत का सवाल है यह रकम 3 लाख 20 हजार करोड़ हैं जिसमें से सार्वजनिक क्षेत्र योजनाओं के लिए 1,80,000 करोड़ रु. की राशि रखी गई है. यह राशि, पिछले सभी योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए रखी गई रकम के कुल जोड़ के आस पास है.

पर इससे क्या फायदा? पिछले तमाम योजनाओं ने लाखों लोगों को गरीबी सीमा रेखा से नीचे ले आई है. इसके अलावा भारी रकम खर्च किए जाने के बावजूद उत्पादन के संदर्भ में तय किये गये लक्ष्यों को हासिल करने में असफलता मिली.

पिछले योजना के दौरान इस्पात, बिजली, लोहा, कोयला, बिजली के सामानों, सिंचाई के लक्ष्यों को भी हासिल नहीं किया जा सका. जहां तय किए गए इन लक्ष्यों को ही हासिल नहीं की जाती तो समाजिक लक्ष्यों को किस तरह हासिल की जा सकती, चाहे उसके लिए हजारों वादें क्यों न किए गए हों.

सातवीं योजना में अर्थनीति में 5 फीसद विकास के लक्ष्य तय किए गए हैं. इससे भारत की जनता को क्या राहत मिल सकती है? छठी योजना में तो यह लक्ष्य 5.2 फीसद था— इसमें लोगों को क्या राहत मिला? दरअसल छठी योजना के दौरान तालाबंदियों, बढ़ते बेरोजगारी तथा ग्रामीण क्षेत्र में लोगों की बदहाली के कारण स्थिति में और बिगड़ाव आई है. इस दुर्गति से, सातवीं योजना के दौरान कुछ राहत मिलेगी ऐसा सोचना बेकार है.

सातवीं योजना में कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत तथा औद्योगिक क्षेत्र में 7 प्रतिशत वार्षिक विकास के लक्ष्य तय किए गए हैं. जब छोटे एवं बड़े, दोनों उद्योगों के वर्त्तमान उत्पादन क्षमता को ही सम्पूर्ण रूप से इस्तेमाल नहीं किया जा सका और जब लोगों की खरीद शक्ति घटती जा रही है और आने वाले दिनों में और घटने की सम्भावना है तब यह औद्योगिक विकास दर क्या सम्भव है.

दस्तावेजों में कहा गया है कि घोषित सिद्धांतों —विकास, समानता एवं सामाजिक न्याय, आत्मनिर्भरता, कार्य-कुशलता तथा उत्पादकताके ढांचे में "सामाजिक न्याय, के लिए आंदोलन की रफ्तार तेज करना होगा तथा बेरोजगारी और गरीबी हटाने पर ही ज्यदा ध्यान रखना होगा. इसलिए सातवीं योजना को उन नीतियों तथा कार्यो पर ही ज्यादा जोर देना होगा जिससे खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाया जा सके, रोजगार के नये क्षेत्र खोले जा सके तथा उत्पादकता बढ़ाई जा सके.

फिर लोगों से धोखाधड़ी की वही पूरानी रीति—उन्हें फिर इस भ्रम में रखना कि उत्पादन में वृद्धि से ही उनके हालात में आमूल सुधार हो सकती है. तजुर्बा यह कहती है कि इस वर्त्तमान व्यवस्था में पूंजीपति और सामंति वर्ग की ही हितों की रक्षा होती है, मेहनतकश और गरीब जनता के लिए कोई राहत नहीं.

दस्तावेजों में ऊंचे लक्ष्यों की ओर भी घोषणाएं है पर योजनाओं में—अपने वर्ग के आधार में कोई बदलाव नहीं है, नीहित स्वार्थों के अधिकारों का गतिरोध करने की हिम्मत नहीं दिखाई गई तथा जमींदारों के मिल्कियत खत्म किए जाने की साहस नहीं दिखाई गई—इसलिए इनके वादे सिर्फ वादेही बनकर रह जायेंगे.

समूची योजना तथा इसके उद्देश्य पत्र, गहराते आर्थिक संकट तथा पिछले योजनाओं के परिणाम से उत्पन्न दबाव से दबी हुई है.

सालों से लिए गये कर्ज के बोझ तथा भारत की जनता पर भारी करों की दबाव एवं निर्यात के लिए पश्चिमी देशों पर निर्भरशील रहना और अब यह मौजूदा संकट से हमारे योजना गम्भीर रूप से प्रभावित है. "सातवीं योजना को, घटते विदेशी सहायता, सूद की दरों में वृद्धि एवं इन तमाम बातों को ध्यान में रखना होगा".

भारत को कर्ज देनेवाला अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक यह दबाव डाल रहें है कि औद्योगिक विकास की हमारी आकांक्षाओं को हमें त्यागना चाहिए और हमारे योजना बनाने वाले भी ठीक यही कर रहे हैं.

आर्थिक साधनों को जुटाने के लिए हमारे योजना बनाने वाले क्या कर रहें है? "जरूरी संसाधनों की हमें इस तरह जुटाना होगा जिससे कि हमें बाहरी सहायता पर निर्भरशीलता या घाटे की वित्त व्यवस्था जिसके कारण मुद्रास्फीति बढ़ती है, को कम से कम किया जा सके. इसे करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को उत्पादकता और कार्य कुशलता बढ़ाकर और अधिक अंदरूनी साधनों को उत्पन्न करना होगा."

योजनाओं के लिए जरूरत साधनों को जुटाने तथा बाहरी सहायता या घाटे की वित्त व्यवस्था पर निर्भर न रहने के लिए, सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा कुछ किए जाने की सम्भावना ना के बराबर है. जबतक नौकरशाही तथा भ्रष्ट प्रबन्धन को संरक्षण देना एवं अड़ियल तथा मजदूर-विरोधी प्रबंधन के प्रति पक्षपात-पूर्ण रवैया को छोड़ा नहीं जाता तथा सार्वजनिक क्षेत्र को अधिकारीतंत्र के गिरफ्त से निकालकर मजदूरों के भागीदारी वाले प्रबंधन में नहीं लाया जाता है तबतक सार्वजनिक क्षेत्र कोई मदद में नहीं आ सकता.

सार्वजनिक क्षेत्र, कुप्रबंध और अकुशलता के लिए बदनाम है. हर साल, साधनों में अंशदान के बजाय हर साल करोड़ों के घाटे में चली जाती हैं. 1983-84 वर्ष में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र में 30 करोड़ से अधिक का घाटा हुआ है.

पर सरकार इस स्थिति में बदलाव लाने में इच्छुक नहीं. सीटू ने बार-बार यह घोषणा करती रही है कि समानता के आधार पर प्रबंधन में हिस्सेदारी के आधार पर उद्योगों को चलाने की जिम्मेदारी निभाने के लिए सीटू की ट्रेड यूनियनें तथा मजदूर तैयार हैं. पर भारत सरकार दुनिया की नजरों में सिर्फ अपनी कथित समाजवादी दृष्टिकोण की झूठे धारणा को बनाए रखने के लिए प्रबंधन में मजदूरों की भागीदारी की नई योजनाओं की घोषणा करती है, जो कभी लागू नहीं की जाती.

इस महत्वपूर्ण सवाल पर सातवीं योजना के दस्तावेजों में अस्पष्टरूप से जिक्र किया गया. किसी संस्थान की भाग्य रचना में मजदूरों को शामिल किए जाने की योजना तथा औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने में, सातवीं योजना को, काम के आधार-संहिता सुधारने, काम के लिए उत्साहित करने तथा अनुपस्थिति घटाने की दिशा में तथा कार्य-दिवसों में हानि को कम करने एवं उत्पादकता बढ़ाने के लक्ष्य को सामने रखकर तैयार करना होगा"—और जाहिर है, यह सभी समानता के आधार पर मजदूरों की भागीदारी के बिना ही किया जायगा.

इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए उल्टा रास्ता अपनाया जा रहा है. मजदूरों को प्रोत्साहित करने तथा सार्वजनिक क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाने के लिए दमनकारी नीतियां अपनाई जा रही है. राष्ट्रीयकृत कोल इण्डिया द्वारा आठ दिनों के वेतन में कटौती की जा रही है, इस संस्थान के प्रधान, श्रमिक नेताओं के नाम उल्टा-सीधा बयान जारी करते हैं तथा यूनियनों के साथ बातचीत करने से भी इंकार करने की हिम्मत दिखाते हैं. फिरभी इन्हें न तो श्रममन्त्री और न ही उद्योगमन्त्री निकाल बाहर करते हैं. यही आदमी हस्ताक्षरित समझौते को भी लागू करने से इंकार करते रहे हैं. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि न तो सरकार और न ही योजना आयोग इस क्षेत्र में सुधार लाने के लिए उत्सुक हैं.

इसके अलावा, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों में घटिया किस्म के कच्चे माल का इस्तेमाल तथा अन्य भ्रष्ट तौर-तरीके भी घाटे के कुछ कारणों में से है. राष्ट्रीयकृत कोल इण्डिया पर ही रेल तथा विद्युत बोर्डों को घटिया किस्म के कोयले भेजे जाने का आरोप लगाया गया है. विद्युत बोर्डों ने यह आरोप भी लगाया है कि इसके चलते कीमती मशीनों का नुकसान हुआ. पर जब मजदूर ऐसे भ्रष्टाचार का पर्दाफास करते हैं तो उनपर दण्डात्मक कार्यवाईयां चलाई जाती है.

इसलिए यह आशा करना भूल होगा कि अधिकारीतंत्र द्वारा चलाए जा रहे सार्वजनिक क्षेत्र, बाहरी सहायता तथा घाटे की वित्त व्यवस्था पर निर्भरशील रहना समाप्त कर देगी. आर्थिक साधनों के लिए सातवीं योजना को कीमती विदेशी कर्ज तथा घाटे की वित्त व्यवस्था पर ही और ज्यादा निर्भर करना पड़ेगा. इसका अर्थ होगा जनता के ऊपर और अधिक बोझ तथा इस कर्ज के भुगतान के लिए सामानों की कीमतों में और अधिक वृद्धी. ऐसे ही वर्तमान घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण कीमतें बढ़ रही हैं जिसे स्वयं वित्तमन्त्री को भी स्वीकार करना पड़ा कीमतें और भी बढ़ेंगी, साथ ही साथ गरीब जनता की दुर्दशा भी. स्थिति को सुधारने की बजाय सातवीं योजना इसे और भी संकटपूर्ण बना देगी.

इसका सीधा नतीजा क्या होगा ? तमाम आधुनिक बड़े उद्योग के विकास को रोकना पड़ेगा. दस्तावेज में वर्तमान उत्पादन क्षमता का इस्तेमाल न कर पाने की दुहाई का ज्यादा जिक्र किया गया. "सातवीं योजना को उत्पादन क्षमता को बढ़ाने पर बल देना पड़ेगा तथा पूरी क्षमता इस्तेमाल न कर पाने के कारणों को खोज निकालना पड़ेगा. मुख्य सार्वजनिक क्षेत्र के इकाईयों के कामकाजों पर लगातार और नियमितरूप से निगरानी खासकर क्षमता का पूरा इस्तेमाल करने के कारगर कदम उठाना पड़ेगा." सभी जानते हैं कि दुनिया में भारत ही ऐसा देश है जहां इस्पात, कोयला, बिजली जैसे महत्वपूर्ण चीजों की प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा खपत सबसे कम है. पर क्यों ? क्या योजना बनानेवालों ने कभी भी उत्पादन क्षमता के इस्तेमाल में कमी की इन खामियों को दूर करने के बारे में सोचा है ? यह, उत्पादन साधनों द्वारा अतिरिक्त उत्पादन के कारण पैदा आर्थिक संकट का सही सही प्रतिफलन है. यह अतिरिक्त उत्पादन लोगों की जरूरतों पर आधारित नहीं बल्कि हर पंचवर्षीय योजना के बाद लोगों की घटती खरीद शक्ति पर आधारित है. अगर इस कमजोरी को दूर नहीं किया गया तो पूरी क्षमता का इस्तेमाल किया जाना सम्भव नहीं. इसे दूर करते हुए औद्योगिक प्रगति को तेज करने के बजाय विकास के पूँजीवादी रास्ता पर चलने के कारण विकास में रुकावट आती है तथा लोगों की खरीदशक्ति और घटती है, और इस तरह उत्पादन क्षमता का पूरा इस्तेमाल न किए जाने का सिलसिला चलता रहता है.

इसका मतलब यह है कि मजदूरों, हमारे नौजवान पीढ़ी तथा कर्मचारियों को आधुनिक उद्योगों में काम का, आधुनिक वेतन स्तर की आशाओं को छोड़ना पड़ेगा. इन्हें इन पुराने घीसे पीटे उद्योगों पर ही आश्रित रहना होगा.

इसलिए, मजदूरों पर ज्यादा काम का बोझ बढ़ाकर तथा नये नये मशीनें बैठाकर हजारों को बेरोजगार बनाकर, अब उत्पादकता बढ़ाने पर ज्यदा बल दिया जायगा. जब आप उत्पादन के मानी हुई तरीकों को मानने से इंकार करेंगे तथा

(शेष पृष्ठ 24 पर)

(पृष्ठ 8 का शेष)

भ्रष्टाचार और कुप्रबंध को समाप्त करने, उत्पादन के समस्याओं को सुलझाने के लिए, प्रबंधन में मजदूरों की हिस्सेदारी की बात को नहीं मानेंगे तो मजदूरों पर काम के बोझ थोपकर उत्पादकता बढ़ाने का मतलब होगा उन्हें काम से और दूर हटाना. सातवीं योजना के वर्षों में मजदूरवर्ग को बड़े पैमाने पर इन्हीं हमलों का सामना करना पड़ेगा.

उद्देश्य पत्र दस्तावेज में कहा गया है, "सातवीं योजना को उन नीतियों और कार्यक्रमों पर बल देना होगा जिसमें खाद्यान्न उत्पादन में तेजी लाई जा सके, रोजगार के नये नये क्षेत्र खोलें जा सके तथा उत्पादकता बढ़ाई जा सके." इसमें बताया गया, "सातवीं योजना का लक्ष्य कृषि क्षेत्र में तेज गति से विकास तथा खाद्यान्न एवं भोज्य तेल पर आत्मनिर्भरता हासिल करने, पर होना चाहिए. इसके लिए विशेष कार्यक्रमों को लागू किया जाना चाहिए जिससे कि चावल का उत्पादन, खासकर पूर्वी क्षेत्र में तथा दक्षिण क्षेत्र के कई राज्यों में, बढ़ाई जा सके. इसी तरह के कार्यक्रम तेल, दाल, मोटा अनाज के उत्पादन बढ़ाने के लिए भी तय किया जाना जरूरी है". इससे यह स्पष्ट होता है कि पिछले छः 'सफल' पचवर्षीय योजनाओं के बावजूद देश अभी भी खाद्यान्न तथा भोज्य तेल के मामले में पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं हो सका. इसलिए उद्देश्य पत्र में आत्मनिर्भरता की जरूरत पर बल दिया जाना चाहिए.

दूसरी बात यह है कि कृषि उत्पादन में 4 फीसद की प्रगति तथा विकास के इन लक्ष्यों से क्या स्थिति में आमूल सुधार की कोई सम्भावना है? आजकी एकतरफा खाद्यान्न वितरण व्यवस्था से ऐसा कुछ होने की उम्मीद कम है. ज्यादा से ज्यदा यही हो सकता है कि भोज्य तेल की अभाव को शायद उतना नहीं महसूस किया जायगा. पर यह सोचना एकदम गलत होगा कि अनाज आदि को उत्पादन में वृद्धि से ग्रामीण क्षेत्र के लोगों का खरीद शक्ति बढ़ जायगा तथा खद्यान्न का खपत भी बढ़ जायगा. इस व्यवस्था में उत्पादन के तमाम लाभों को मुट्ठीभर इजारेदार ही हड़प लेते हैं. अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के मुताबिक उत्पान के जरिये का आबंटन ही लोगों की खपत के जरिये का आवंटन निर्धारित करता है. दरअसल, योजना बनाने वाले अब यह महसूस कर रहें है कि आर्थिक विकास होने से ही लोगों की आर्थिक स्थिति में भी अपने आप सुधार नहीं आ सकती.

योजना बनाने वालों के इस मूल बहानेबाजी का एकमात्र समाधान है—उत्पादन के साधनों का आवंटन में, भूमि सम्पत्तिओं के सम्बन्धों आदि में आमूल परिवर्तन लाना होगा. —और इसे ये नहीं मान सकते.

खाद्य के सम्बन्ध में यह कार्यक्रम अगर सफल हुआ तो ज्यदा से ज्यदा वर्त्तमान दुर्दशाग्रस्त स्थिति को और बादतर होने से रोक सकती है, बस. पर उद्देश्यपत्र दस्तावेज में यह आश्वासन दिया गया कि इस कार्यक्रम के जरिए एक नई दिशा खोली जा रही है जिससे ग्रामीण दरिद्रता को समाप्त की जायगी. "इस गरीबी हटाओ कार्यक्रम को सफलीभूत करने के लिए जमिनों का पुनर्बन्टन, भूमि सुधार आदि को इस कार्यक्रम के साथ सीधा जोड़ना होगा."

यही अश्वासन छठी योजना दस्तावेजों में भी दी गई थी जिसका योजना के समाप्ति तक कोई असर नजर नहीं आई. कारण समझना बहुत आसान है. जैसा कि कहा गया है कि सर्वहरा दिहाती गरीबों को आमदनी का एक जरिया देना होगा —इसके लिए केन्द्रीकृत जमीनों को छीन कर भूमिहिनों में बांटना होगा. पर, न तो छठी योजना में और न ही सातवीं योजना के उद्देश्यपत्र दस्तावेजों में इस ओर कोई निर्देश है. इसके स्थान पर कांग्रेस (आई) की वही धोखा देनेवाली परंपरागत नारों को ही दोहराया गया है कि अतिरिक्त जमीनों को बांट दिया जाय. यहां यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि जिनके पास कुछ भी नहीं है उन्हें क्या इंदिरा गांधी सचमुच कुछ देना चाहती है? अगर ऐसा है तो क्यों प० बंगाल विधान सभा द्वारा पारित उन कानूनों पर, जिनका एक ही लक्ष्य है, अबतक राष्ट्रपति के अनुमति और हस्तक्षार नहीं दिए गए हैं?

अतः, इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा—गरीबी दूर करने का—महज दिवास्वप्न ही रह जायगा.

छठी योजना की तरह इस नए उद्देश्यपत्र दस्तावेज में लाखों लोगों को रोजगार दिये जाने का दावा पेश किया गया है जिससे कि उन्हें गरीबी सीमारेखा से ऊपर लाया जा सके. "रोजगार योजना का उद्देश्य होगा स्थायी सम्पत्तियों का पैदा करना, कार्यकुशलता बढ़ाना तथा स्थायी और लगातार रोजगार क्षेत्र तैयार करना जिससे आमदनी का स्तर लगातार बढ़ते रहे. इसके साथसाथ आर्थिकरूप से फायदेमन्द गतिविधियों के लिए स्वनियोजन को भी बढ़ावा दिया जायगा. इसके जरिए ग्रामीण जनता के एक बड़े हिस्से को कृषि से अन्य क्षेत्रों में ले जाया जायगा जिससे ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के नये-नये क्षेत्र खुलेंगे, हथ करघा तथा हाथ से बने सामानों के उत्पादन बढ़ेंगे और ग्राम्य क्षेत्र की आमदनी बढ़ेगी."

ग्रामीण बेरोजगारों के लिए कुछ किए जाने की हर प्रचेष्टा का हम स्वागत करते हैं. ऐसी योजनाएं और कार्यक्रम पहले भी बनी पर ग्रामीण क्षेत्र की स्थिति बद से बदतर होती चली गयी. इन कार्यक्रमों के लिए खर्च किए गए पैसों का एक मामूली हिस्सा ही इन गरीबों तक पहुंच पाती है. इसलिए रोजगार के नये क्षेत्र खोले जाने का दावा सही नहीं है.

यह ठीक है कि कुछ लोगों को जरूर सुविधाएं प्राप्त हुई होंगी पर बेरोजगारी समस्या से निपटने तथा आर्थिक प्रगति

का एक नया आधार बनाने की जो बात है, उन उपलब्धियों से काफी दूर रह गये हैं.

रोजगार की यह योजना अपने आप ही हस्तशिल्प की पुनर्स्थापना तथा कृषि आधारित नये उद्योगों की स्थापना में सहायक होंगी—यह दावा निराधार है. हस्तशिल्प तथा हथ-करघा एवं अन्य छोटे उद्योग सम्पूर्णरूप से बर्बाद हो गया है. दसियों हजार छोटी-छोटी इकाईयां बन्द पड़ी हैं और लाखों मजदूर बेरोजगार बना दिए गए हैं. इन परिस्थितियों में रोजगार योजना एक राहत कार्य के सिवा और कुछ नहीं हो सकती.

स्व-नियोजन उद्योग पर जोर दिया जा रहा हैं. यह रोजगार देने की अपनी जिम्मेदारी से बच निकलने का आसान तरीका है. स्व-नियोजन के नाम पर अपने कुछ खास लोगों में कई हजार रुपये बांटे जायेंगे. इन्दिरा सरकार द्वारा आयोजित बैंक मेलाओं का यही आधार है. यह सब अगले चुनावों को ध्यान में रखकर किया जा रहा है और इसके अलावा एक बार कुछ पैसों का विवरण किए जाने पर सरकार यह दावा तो कर सकती है कि कई लाख लोगों को रोजगार दिया गया. जिन्हें जरूरत है उन्हें लाभदायी रोजगार दिए जाने का जो लक्ष्य तय किया गया वह स्वप्न पूरा होने का कोई आसार नजर नहीं आता.

सभी जरूरतमंद को रोजगार दिए जाने की जो सराहनीय लक्ष्य का उद्देश्यपत्र दस्तावेजों में जो घोषणा की गई है उनमें शायद शहरी इलाकों के दो करोड़ बेरोजगारों तथा बेरोजगार औद्योगिक मजदूरों की गिनती नहीं की गई है. इनका कहीं भी कोई जिक्र नहीं है. सभी कार्यक्रम ग्रामीण बेरोजगारी से ही जुड़ा हुआ है. तालाबन्दी और मिलबन्दियों के शिकार उन दसियों हजार मजदूरों का क्या होगा, उद्देश्यपत्र में इसका कोई जिक्र नहीं है.

इसके विपरीत, सरकार तथा मालिकान, उद्योगों को चुस्त दुरुस्त बनाने के लिए बार-बार आधुनिकीकरण, कम्प्यूट-राईजेशन तथा आटोमेशन की बातें करते हैं—जिसका मतलब है बेरोजगारी और बढ़ेगी. श्रम मन्त्रालय से, हाल में, पता चला है कि कम्प्यूटराईजेशन के मामले में सरकार अबतक लगाये गए अपनी पाबंदियों को वापस ले ली है और कम्प्यूटर लगाने की इजाजत दे दी है. यह मान लिया गया था कि सम्बद्ध ट्रेड यूनियनों की इजाजत के बगैर कम्प्यूटर नहीं बैठाई जायगी पर अब लग रहा है कि ट्रेड यूनियनों को इस संदर्भ में सिर्फ इत्तला दे दी जाएगी, इससे अधिक कुछ नहीं.

उद्देश्यपत्र दस्तावेजों में ग्रामीण आवास व्यवस्था की बात भी कही गई है. बहुत अच्छा. पर शहरी इलाकों में आवास व्यवस्था, औद्योगिक मजदूरों के लिए आवास व्यवस्था—इस सबका क्या हुआ ? उन्हें झुग्गी-झोपड़ियों में रहने को कहा जाता है. यह व्यवस्था नहीं बदलेगी, सिर्फ उनके लिए उसी में कुछ और सुविधाओं की व्यवस्था की जायगी. ऐसा अनुमान था कि छठी पंच वर्षीय योजना के अन्त में 3 करोड़ से भी अधिक लोग शहरी इलाकों के झुग्गियों में जिन्दगी बसर करेंगे. कौन जानता है इस योजना के अन्त तक और कितने करोड़ लोग इनके साथ जुटेंगे.

उद्देश्यपत्र दस्तावेज में, भारत की गरीब जनता और मजदूर-वर्ग की जिन्दगी सुधारने की तो कोई व्यवस्था है ही नहीं बल्कि उनकी जिन्दगी को और भी बदत्तर बनाने का कार्यक्रम तय किया गया है.

अधिनायकवाद तथा फूटपरस्त ताकतों को शिकस्त दो

पिछले दो सालों में देश में अभूतपूर्व घटनाएं घटती गई है, पर ट्रेड यूनियन न तो इस पर ध्यान दिया और न ही इसका मुकाबला करने के लिए कुछ किया.

फूटपरस्त ताकतों की चुनौतियां खतरनाक बन गई है; विदेशी सहायता की मदद से अलगाववादियों द्वारा देश को टुकड़े-टुकड़े करने की साजिश रची गई है. दूसरी ओर, प्रशासनिक उपायों से समस्याओं से निपटने के कारण सरकार स्थिति को और बिगाड़ रही है. लोगों के जनवादी अधिकारों को कुचला जा रहा. राष्ट्रीय सुरक्षा कानुन में संशोधन, विशेष अदालत कानून, राज्यपालों द्वारा क्षमता का दुरुपयोग, प० बंगाल तथा आंध्रप्रदेश के मामले में अधिकारों का नाजायज इस्तेमाल और अंत में सांप्रदायिक दंगा ग्रस्त इलाकों में एवं अन्य स्थानों पर व्यापक रूप से सेना और सुरक्षा बल तैनात करना—यह सभी आपातकालीन स्थिति से भी बदतर स्थिति को ही दिखाता है. पर संगठित ट्रेड यूनियन आंदोलन; इन हमलों को रोकने में सफल नहीं हुए. इस अधिनायकवादी रुख के खिलाफ अगर मजदूर अपने संगठित शक्ति से उठ खड़े नहीं होते तो देश की जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभाने में वह कामयाब नहीं हो पायेंगे.

श्रीमति इंदिरा गांधी अपनी अधिनायकवादी मंसूबों को बरकार रखते हुए बड़ी बेशर्मी से एन. टी. रामाराव सरकार को बर्खास्त करने में कामयाब हो गई. कुछ ही सप्ताह के अंदर-अंदर जनता के बहुमत प्राप्त गैरकांग्रेसी सरकार को गैरकानूनी तरीके से गिराने की यह दूसरी मिशाल है

संविधान तथा जनतंत्र पर, कठपुतली राज्यपालों के जरिये जो बेहया हमले इंदिरा गांधी ने चलाई, उससे यह साफ जाहिर है कि वह जनवाद और विपक्षीयों का पूरा सफाया कर एक ऐसी स्थिति पैदा करना चाहती है जो आपात्कालीन स्थिति से भी बदतर होगी.

प० बंगाल और त्रिपुरा में, केन्द्र सरकार द्वारा वाम मोर्चा सरकारों के साथ सभी मामलों में भेदपूर्ण बर्ताव किया जा रहा है तथा अपने अनुयायियों को इन सरकारों के खिलाफ हंगामा करने की खुली छूट दी जा रही है.

आठवीं वित्त आयोग की सिफारिशों को इस वर्ष लागू करने से इन्कार करते हुए भारत सरकार ने राज्यों को करीब 2000 करोड़ रुपये से वंचित किया है. इस मद में प० बंगाल को करीब 300 करोड़ तथा त्रिपुरा को करीब 46 करोड़ रु. से हाथ धोना पड़ा. इन दो राज्यों में अस्थिरता पैदा करने की कांग्रेस (आई) की इस रवैये को शिकस्त देना यहां के मजदूर वर्ग तथा लोगों की अहम जिम्मेदारी है. इसलिए होनेवाले चुनावों में कांग्रेस (आई) पार्टी को परास्त करना जरूरी है.

इससे ज्यादा खतरनाक है फूटपरस्त ताकतों के खिलाफ संघर्ष क्योंकि यह संघर्ष न किसी मालिक के खिलाफ है और न कांग्रेस (आई) सरकार के खिलाफ. अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्य साजिशों का अब, हमें और देश की जनता को तजुर्बा है. अन्य देशों को अपने कब्जे में करने के लिए ये नये-नये आजादी प्राप्त देशों में जनता के बीच फूट डालकर, देश को टुकड़े-टुकड़े करने की, भारत जैसे बड़े-बड़े देशों को विभाजित कर अपने शिकंजे में लेने की कोशिश करते हैं.

असम और पंजाब की घटनाएं इसीका द्योतक हैं. अगर असम में विदेशियों का सवाल उठाया गया तो पंजाब में धार्मिक भावनाओं को उछालकर एक अलग राष्ट्र खालिस्तान की मांग की गई. इस सब के पीछे साम्राज्यवादी उकसावे को हमारे मजदूरवर्ग को समझाना होगा. असम में अमरीकी सजिशों का पर्दाफाश हो चुका है और पंजाब की घटनाएं भी साम्राज्यवादी देशों के मदद और उकसावे को ही दिखाता है. और पाकिस्तान फौजी शासक जिया का भी एक सा रूख है. इन तमाम साजिशों को हमें अच्छी तरह समझना होगा.

यह अलगाववादी शक्तियां हमारे एक व्यापक हिस्से को गुमराह करने में लगे हुए, और इसमें वह माहीर भी हैं. पूंजीवादी व्यवस्था के दिवालियापन, विभिन्न क्षेत्रों के पिछड़ेपन तथा विकास में असमानता, बढ़ते बेरोजगारी, एवं इस बुर्जुवा सामंति सरकार की टूट रही आर्थिक व्यवस्था जिसे एकमात्र भारत के शोषित मेहनतकश जनता ही अपने वर्ग संघर्ष के जरिए बदल सकती है, लोगों की जागरूकता, और चेतना का फायदा उठाकर यह शक्तियां क्षेत्रियता सांप्रदायिकता और जांत-पात और धर्म का हौवा खड़ाकर इन समस्याओं से निपटने के लिए लोगों को उकसावा देते हैं और उन्हें गुमराह कर देते हैं और यह स्थिति साम्राज्यवादी साजिशों के लिए मददगार साबित होता है. और कांग्रेस सरकार की नीतियां भी देश के विघटन में, इन्हीं तत्वों को मदद दे रही है.

पंजाब तथा असम दोनों ही कांग्रेस (आई) सरकार के लिए एक समस्या बनी हुई है क्योंकि अपने संकीर्ण वर्गीय दृष्टिकोण से इन अलगाववादी और विघटनकारी तत्वों को जनता से अलग करने में सफल नहीं हो पा रहे हैं. इसलिए इन्हें जनता की एकता के सवाल को कानून व व्यवस्था का सवाल बनाकर इसे सुलझाने के लिए प्रशासनिक कार्रवाई पर भरोसा करना पड़ रहा है.

पंजाब में इन फूटपरस्त आतंकवादियों को अलग कर उनकी राजनीति को शिकस्त दी जा सकती थी अगर कांग्रेस (आई) सरकार, सी पी आई (एम) की अगुवाई में विपक्षी पार्टियों द्वारा दिए गए राजनीतिक हल को मान ली होती. पर समूचे पंजाब की जनता के हितों में दिए गए यह समाधान कांग्रेस (आई) की चुनावी स्वार्थ के हितों में न रहने के कारण, देश की एकता के कीमत पर उसे नहीं स्वीकारा गया.

ऐसा होना ही था. यह बुर्जुवा-सामंति गठबंधन अपने पुराने भूमि सम्बन्धों को सम्पूर्णरूप से तोड़ने के लिए राजी नहीं हैं और राष्ट्र-विरोधी और अलगाववादी रुझानों को समाप्त करने में भी असमर्थ हैं. हर नये आजादी प्राप्त देश का यही तजुर्बा है

इसलिए, मजदूर-वर्ग तथा ट्रेड यूनियन आन्दोलन को देश की अखण्डता और जनता की एकता बनाए रखने में एक महत्व-पूर्ण भूमिका अदा करनी है. इसके बिना एकता की भावना बरकरार रखना मुश्किल है.

भारत की स्थिति में यही हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है. मजदूरवर्ग, देश की राजनीतिक गतिविधियों से तथा जनता के प्रति, किसानों के प्रति, देश की आजादी के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से न तो वाकिफ हैं और न ही जागरूक हैं. इस जागरूकता के बिना, ट्रेड यूनियन आन्दोलन की जिम्मेदारी सिर्फ मजदूरों के छोटे-छोटे आर्थिक मांगों को मिटाने भर ही रह जायगा और देश द्वारा सामना की जा रही इन नए खतरे को वह देख नहीं पायेंगे.

ट्रेड यूनियन आन्दोलन को अपनी इन कमजोरियों को मिटाकर फूटपरस्त, पृथकतावादी एवं सांप्रदायिक रूझानों के खिलाफ संघर्ष के लिए मजदूरवर्ग को जागरुक करना होगा. अपने संगठित शक्ति के बल पर, राष्ट्र-विरोधी ताकतों के खिलाफ संघर्ष में, ट्रेड यूनियन आन्दोलन को नेतृत्वाकारी भूमिका अदा करनी होगी और अपने संगठित हस्तक्षेप से जनता के अन्य तबके को भी इन चुनौतियों का सामना करने के लिए उत्साहित करना होगा. इस नये परिस्थिति में, ट्रेड यूनियन आन्दोलन की यही सबसे महत्वपूर्ण और जरूरी काम है.

24 अगस्त, 1984